अम्बेडकर का राजनीतिक विरासत और दलित आंदोलन

पंकज कुमार मोहन*

डॉ॰ अम्बेडकर समाज सुधारक और सामाजिक क्रांति के सूत्रधार होने के साथ-साथ राजनीति वेत्ता भी थे। उनके विचार में राजनीतिक सत्ता के बिना दलितों का विकास संभव नहीं था। उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों की लड़ाई लड़ने के लिए 1924 में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' बनाई, 'अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ' बनाया, 'समता सैनिक दल' की स्थापना की। 1936 में 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' (स्वतंत्र श्रम दल) गठित किया। आम चुनाव (1937) में उनके 'स्वतंत्र श्रम दल' ने बंबे प्रांत में विधान सभा का चुनाव लड़ा। जब वे 1942 में भारत के श्रम सदस्य बने तो उन्होंने 'अखिल भारतीय शिडयूल्ड कास्ट्स फेडरेशन' (भारतीय परिगणित जाति संघ) की स्थापना की। इस तरह दलित आंदोलन के विभिन्न मोड़ों और पड़ावों पर अम्बेडकर सामाजिक राजनीतिक मंच बनाते रहे। उनके इरादे ऊँचे और पवित्र थे। यह संगठन सदियों से दलित-शोषित लोगों की आवाज उठाने के लिए संवैधानिक लड़ाई के मंच थे। एक प्रकार से उनके 'स्वतंत्र श्रम दल' (इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी) को ही 'अखिल भारतीय शिड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन' का रूप दिया गया था। इसके प्रथम अध्यक्ष एन॰ शिवराज बनाए गए और स्वयं अम्बेडकर मार्गदृष्टा थे। लेकिन 1946 और स्वतंत्र भारत के प्रथम आम चुनाव (1952) में उनके 'शिडयूल्ड कास्ट्स फेडरेशन' को चुनावी सफलता नहीं मिली। उसका पूर्णरूपेण सफाया हो गया और कांग्रेस की छत्रछाया में जगजीवन राम और अन्य दलित नेता दलितों के नाम पर राजनीतिक सत्ता में आ गए।[1]

इसीलिए ''कैबीनेट मिशन' के आगमन पर क्रप्स ने यह टिप्पणी की कि डॉ॰ अम्बेडकर का संगठन स्थानीय है और बंबई और मध्य प्रांत तथा बरार तक सीमित है, कांग्रेस समर्पित संगठन व्यापक और पूरे भारत में फैला हुआ है।''[2]

अम्बेडकर का स्वप्न:-''अपने जीवन काल में अम्बेडकर ने यह महसूस किया कि पुराने तरीके और दृष्टिकोण आम जनता में बढ़ती प्रताजांत्रिक चेतना के कारण अपर्याप्त हैं। इसीलिए उन्होंने सोचा कि नए सिद्धांतों के प्रकाश में सबका सहयोग लेना जरूरी है।

***शोध छात्र, इतिहास विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा**

लेकिन जैसा कि उनकी सोच थी, वे अपनी असमायिक मृत्यु के कारण 'भारतीय रिपब्लिकन पार्टी' (आर.पी.आई.) की संस्थापना का स्वप्न पूरा होते नहीं देख सके।''[3]

डॉ॰ अम्बेडकर के अनुयायियों द्वारा ''भारतीय रिपब्लिकेन पार्टी'' की विधिवत् स्थापना सन् 1957 में हुई थी। इसका गठन 'अखिल भारतीय शिडयूल्ड कास्ट्स फेडरेशन' (एस.सी.एफ.) में से किया गया था जो भारत के दलित और पिछड़े वर्ग का नेतृत्व करता था। 'एस.सी.एफ.' को 'आर.पी.आई.' में बदलकर इसे राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया गया। लेकिन इसके सर्वसर्वा महार जाति के लोग थे। इसमें जातीय लक्षण विद्यमान थे, साथ ही राजनीतिक हित और महत्वाकांक्षाएं निहित थीं। कांग्रेस से इसका गठबंधन धर्म निरपेक्ष ताकतों को सृदृढ़ करने में सफल रहा।''[4]

''यद्यपि यह अनुसूचित जातियों का दल था, लेकिन 'आर.पी.आई.' ने प्रमुखतया भूमिहीन श्रमिकों की समस्याओं पर अधिक ध्यान दिया, क्योंकि इसमें अधि कांश लोग अछूत जातियों के थे। इसका प्रमुख कारण स्वर्गीय गायकवाड़ का नेतृत्व है जो कि 'आर.पी.आई. के अन्य नेताओं के मुकाबले मजदूरों के संघर्ष धूलिया, जलगांव और नासिक जिलों और नागपुर क्षेत्र के कुछ हिस्सों में आयोजित हुए। सन् 1959 में इन संघर्षों की वजह से लगभग 50000 कार्यकर्ता जेल गए। सन् 1964 के अंत में 'आर. पी.आई.' ने एक और जबर्दस्त सत्याग्रह रेलवे लाइनों और नहरों के किनारे बेकार पड़ी हुई तथा बंजर भूमि सरकार द्वारा भूमिहीन किसानों में वितरित करने के लिए आयोजित किया। जब कांग्रेस नेतृत्व ने यह देखा कि 'आर.पी.आई.' एक शक्तिशाली संगठन के रूप में उभर रही है तो सन् 1967 के चुनावों में 'कांग्रेस-आर. पी.आई.' के चुनावी-गठबंधन का निर्णय किया गया। यहीं से 'आर.पी.आई', का पतन प्रारंभ हो गया। पार्टी राजनीति इस प्रकार उलझ गई कि एक के बार एक दल विभाजन हुए।''[5] इस प्रकार बाबा साहेब की मृत्यु के उपरांत शोषित-दलित क्रांति का जो आह्वान था वह टूटता-बिखरता गया जब अपने स्थापना के कुछ ही दिनों में 'आर.पी.आई.' में गुटबाजी शुरू हो गई। इसमें सबसे शक्तिशाली गायकवाड़ गुट था। जिसने महाराष्ट्र में कांग्रेस के साथ गठबंधन किया और उसकी ओर झुका। खोबरागडे गुट और साथ ही साथ गायकवाड़ गुट कांग्रेस से गठबंधन करके लाभान्वित हुए। खोबरागडे लोक सभा में डिप्टी स्पीकर पद पा गए जबकि 'आर.पी.आई.' के बहुत से महार नेता राज्य सभा और महाराष्ट्र विधान परिषद में कांग्रेस की मदद से सदस्य बन गए।''

यही पर 'कांग्रेस-आर.पी.आई.' पैक्ट ने आगे और भी गुल खिलाए। कुछ लोगों ने लालचवश 'आर.पी.आई.' ही छोड़ दी। इसलिए, ''जिन लोगों ने 'आर.पी.आई' का परित्याग किया और कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण की वे भी लाभान्वित हुए। एक साथ ही कांग्रेस विरोध और कांग्रेस समर्थन की दुमंही नीति के कारण 'आर.पी.आई.' ने बहुत

से राजनीतिक लाभ उठाएं जैसे कि अपने सदस्यों के लिए जिला परिषदों और अन्य चुनावी निकायों मं सदस्यता तथा सरकारी विभागों और निगमों में महत्वपूर्ण पद हासिल कर लिए। जबकि स्पष्टतया 'आर.पी.आई.' खुले रूप में महारों का दल रहा है, अन्य विरोधी दलों ने शेष अनुसूचित जातियों को संगठित करने के लिए कभी भी प्रयत्न नहीं किए। परिणामस्वरूप चमार तथा अन्य अनुसूचित जातियों की उपजातियां किसी भी विकल्प के अभाव में कांग्रेस की समर्थक रहीं।''[6] एक लंबे अरसे तक कोली-कोरी कांग्रेस के वोट बैंक बने रहे।

उत्तर भारत में आंधी और तूफान की तरह बाबा साहेब के दलित आंदोलन और 'आर.पी.आई.' की गतिविधियों का संचालन बौद्ध धर्म में दीक्षित और भगवतीप्रसाद मौर्य से बुद्धप्रिय मौर्य बनने वाले इस युवा नेता ने किया। वे प्रथम बार आर.पी.आई. के टिकट पर अलीगढ़ सामान्य सीट से सन् 1962 में लोकसभा के सदस्य बने। दूसरी बार गाजियाबाद सामान्य सीट से 'आर.पी.आई.' टिकट पर सन् 1971 में संसद सदस्य चुने गए। बाद में 1972 में 'आर.पी.आई'. से त्यागपत्र देकर कांग्रेस की टिकट पर चुने गए और इंदिरा गांधी मंत्रिमंडल में राज्य कृषि मंत्री और राज्य उद्योग मंत्री बने। इस प्रकार 'आर.पी.आई.' का जिस तेजी से उत्तर भारत में ग्राफ बढ़ा था वह उतर गया। इस प्रकार दलित क्रांति का दीपक बुझ गया। पूरी तरह चमार जाति तब तक 'आर. पी.आई.' से जुड़ गई थी। उधर महाराष्ट्र में ''अम्बेडकर की मृत्यु के उपरांत बी.सी. कांबले और गायकवाड़ गुट में संघर्ष हुए जो कांबले द्वारा उचित पुस्तक 'सत्याग्रह का मूल्यांकन' से स्पष्ट है।''[7]

कुल मिलाकर अपने राजनीतिक चरित्र में 'आर.पी.आई.' एक जुझारू पार्टी रही। नेहरू की मृत्यु के बाद जब लाल बहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने ''गायकवाड़, खोबरागड़े और अन्य दलित नेताओं ने प्रधानमंत्री को 'आर.पी.आई.' की ओर से ज्ञापन दिया। जिसमें कहा गया (1) संसद के केंद्रीय कक्ष में डॉ. अम्बेडकर का चित्र लगाया जाए (2) जोतने वाले को जमीन दी जाए (3) भूमिहीन श्रमिकों को बेकार और बंजर भूमि दी जाए (4)पर्याप्त अनाज वितरण की व्यवस्था और बढ़ती कीमतों को रोका जाए (5) गंदी बस्तियों के निवासियों के रहने के स्थानों का विकास किया जाए (6) न्यूनतम वेतन अधिनियम, 1946 को क्रियान्वित किया जाए (7) संविधान में अनुसूचित जातियों को प्रदत्त सुविधाएँ नव बौद्धों को भी प्रदान की जाय (8) अछूतों पर अत्याचार रूक जाए (9) अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम के अंतर्गत उन्हें पूर्ण न्याय प्रदान किया जाए (10) सन् 1970 से पूर्व अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का नौकरियों में आरक्षण पूरा किया जाए।''[8] लेकिन 'आर.पी.आई.' की यह मांगे इतनी सामान्य थीं कि देर-सबेर सरकार इन्हें पूरा कर रही थी।

भारतीय राजनीति की विशेषता है कि राजनीतिक दल बनते बाद में हैं, टूटते पहले हैं। कांग्रेस, समाजवादी, साम्यवादी दलों का यह हाल हो चुका था, सन् 1969 में 'आर. पी.आई.' दो भागों में विभाजित हो गई थी। मुख्य दल से बी. डी. खोबरागड़े और उनके समर्थक अलग हो गए थे। सन् 1974 में दोनों गुटों ने अपने मतभेदों को भुलाकर 15 सदस्यों की एक प्रीसीडियम नियुक्त की। अक्टूबर 1974 में नागपुर में हुए एक पार्टी सम्मेलन ने उसी प्रीसीडियम को भंग कर दिया और बी.डी. खोबरागड़े को उसका अध्यक्ष बनाया गया। तदुपरांत पुनः दो गुट बन कर उभर आए। एक खोबरागडे का, दूसरा गवई का। 'आर.पी.आई.' के नवंबर 1975 में संपन्न 7वें अखिल भारतीय सम्मेलन में गवई को दल का अध्यक्ष चुना गया।''[9]

डॉ॰ अम्बेडकर के बाद का दलित नेतृत्व आपस में गुत्थम गुत्था होता रहा। उसने डॉ॰ अम्बेडकर का नाम तो बहुत लिया, परंतु सत्ता, सम्मान और संपत्ति के छोटे से हिस्सों के लिए वह सत्ता-प्रतिष्ठान से चिपकने में ही जुटा रहा।''[10] 'आर.पी.आई'. का वर्षों यही हाल रहा। यही नहीं वह एक जाति विशेष और क्षेत्रीय पार्टी बनकर रह गई।

दलित आंदोलन में सक्रिय अनेक सामाजिक राजनीतिक कार्यकर्ताओं का मत है कि सामाजिक समता की दिशा में परिवर्तन की प्रक्रिया अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं रही है। आज समय सिर्फ यह नहीं है कि अनुसूचित जातियों की उन्नति की रफ्तार बहुत ध ीमी है। दलितों की कई समस्याओं और उनके भविष्य को लेकर चिंता का मूल कारण उनके प्रति फैला हुआ पूर्वाग्रह है। यह पूर्वाग्रह दलितों के विरुद्ध हिंसा और बर्बरता के रूप में जब-तब प्रकट होता रहता है। उसके मूल में दलितों की उन्नति और गतिशीलता के प्रतिरोध की भावना रहती है।''[11] आजन्म अम्बेडकर, गांधी और कांग्रेस टक्कर लेते रहे, वे कांग्रेस को ऊँची जातियें का दल मानते उसके प्रखर आलोचक रहे, अपेक्षित जीवन जीया, अब रिपब्लिकन कांग्रेस की गोद में बैठने में गौरव समझते हैं।

दलित पैंथर अमेरिका में बसे नीग्रो युवकों ने 'ब्लैक पैंथर' नाम से गोरों की नस्ल, रंगभेद नीति के खिलाफ क्रांतिकारी संगठन बनाया था। ''दलित साहित्यकारों को साहित्य लिखने की प्रेरणा प्रमुख्तया नीग्रो साहित्य से प्राप्त हुई। नीग्रो लोगों को भी इसी प्रकार की सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ा।'' ''महाराष्ट्र में अनुसूचित जातियों की जितनी जनसंख्या है उसमें सभी उपजातियों के मुकाबले अकेले महार 35 प्रतिशत हैं। साधारणतया 'दलित पैंथर आंदोलन' महावर वैचारिक आंदोलन ही कहा जा सकता है। यद्यपि डॉ॰ अम्बेडकर ने अनुसूचित-दलित जातियों के नेता के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित की लेकिन महाराष्ट्र में उनका प्रभाव महारों तक सीमित था। उनका बौद्ध धर्म अपनाने का आह्वान भी महारों तक सीमित रहा। महाराष्ट्र में इसीलिए 'महार' और 'बौद्ध' पर्यायवाची बन गए हैं। वहां महार-मांग और महार-चम्भार वेमनस्य

में वृद्धि हुई है क्योंकि महारों ने अपने राजनीतिक संगठन की वजह से सरकार द्वारा अनुसूचित जातियों को प्रदत्त सभी सुविधाएं अकेले ही उठाई हैं।''[12]

'दलित पैंथर' बंबई और पुणे जैसे शहरों में प्रभावी रहे जहां महारों की अधिक जनसंख्या है। उन्होंने ऐसा माहौल बनाया है कि दलित पैंथर एक राजनीतिक ताकत है जो वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को उखाड़ फेंकना चाहती है। अक्सर आरोप लगाया जाता है कि ''उनके राजनीतिक उद्देश्य उनके घोषणा पत्र में हैं तब तक पूरे नहीं हो सकते जब तक कि वे अनुसूचित जातियों के दल के रूप में रहते हैं।''दलित पैंथरों की क्रांतिकारी विचारधारा से त्रस्त 'आर.पी.आई', के विभिन्न गुटों ने एकता स्थापित करने की कोशिश की है। 'आर.पी.आई.' के प्रमुख नेता शांताबाई दानी और आर.एस.गवई ने अपनी जनसभाओं में यहां तक कहा कि 'दलित पैंथर–जहां भी मिलें उन्हें समाप्त करो। महाराष्ट्र की अनुसूचित जातियों के कांग्रसे विधायक तथा गैर–महार इन्हें 'आर.पी.आई.' के लिए सिरदर्द मानते हैं।'' हिंदी जगत में दलित पैंथरों की रचनाओं का व्यापक स्वागत हुआ है। दलित साहित्य के अब संदर्भ भी दिए जाते हैं।

संदर्भ :

1. कुबेर, डब्लू॰ एन॰ (1973) **डॉ॰ अम्बेडकर : एक क्रिटीकल स्टडी,** न्यू देहली : पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, पृ॰ 31, 33, 36–39,49,62.
2. कुबेर, पृ॰ 148 (परिशिष्ट–3)
3. कुबेर, पृ॰ 148 (परिशिष्ट–3)
4. कुबेर, पृ॰ 148 (परिशिष्ट–3)
5. कुबेर, पृ॰ 148–149 (परिशिष्ट–3)
6. कुबेर, पृ॰ 149 (परिशिष्ट–3)
7. द्रष्टव्य हरित, द्रोपदी **हमें जिन पर गर्व है**, पृ॰ 283–284
8. कुबेर, 149 (परिशिष्ट–3)
9. कुबेर, पृ॰ 150
10. मंत्री, गणेश (2011) **गाँधी और अम्बेडकर**, नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, पृ॰ 32

11. जोशी, बारबरा आर॰ (1982) **डेमोक्रेसी इन सर्च ऑफ इक्वालिटी : अनटचेबुल पॉलिटिक्स एंड इंडियन सोशल चेन्ज,** दिल्ली : हिंदुस्तान पब्लिशिंग कॉरपोरेशन (भारत), पृ॰ 25
12. चंचरीक, कन्हैयालाल (2012) **आधुनिक भारत का दलित आंदोलन**, नई दिल्ली : यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन